पंचम अध्याय

“सामाजिक क्रांति के रुप में दलित पात्रों का योगदान”

पंचम् अध्याय

"सामाजिक क्रांति में दलित पात्रों का योगदान"

1) सामाजिक क्रांति - कारण, स्वरूप ।

2) सामाजिक क्रांति के दूत - डॉ. आंबेडकर ।

3) साहित्यिकारों का कार्य ।

4) आलोच्य उपन्यासकारों का कार्य ।

5) आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी पात्र ।

6) निष्कर्ष ।

पंचम अध्याय
"सामाजिक क्रांति में दलित पात्रों का योगदान"

1) सामाजिक क्रांति में दलित पात्रों का योगदान :-

परिवर्तन समाज जीवन का नियम रहा हैं। समाज में होनेवाला परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर होता हैं। यह परिवर्तन व्यक्ति तथा संस्था के कार्य के परिणाम स्वरूप होता हैं। विचारात्मक, हितकारी परिवर्तन समाज के लिए उपयुक्त रहता हैं। उसे सामान्यत: 'क्रांति' कहा जाता हैं। 'सामाजिक क्रांति' जागृत समाज का लक्षण माना जाता हैं। समाज जड़ नहीं होता, अर्थात उसमें बदलाव होता रहता है। अत: शोषण, अन्याय के खिलाफ मानव एवं समाज विद्रोह करता है इसी विद्रोह, असंतोष को 'सामाजिक क्रांति' माना जाता हैं। क्रांति के कारण समाज का जीवन बदलता हैं। फ्रेंच राज्यक्रांति, रूस क्रांति का इतिहास रहा हैं। उसी प्रकार अब्राहम लिंकन, कार्ल मार्क्स, लेनीन, महात्मा गांधी, मदर टेरेसा आदि जैसे कई सामाजिक क्रांति के मसीहां बने। उनका कार्य समाज के लिए उपयुक्त रहा तथा सामाजिक क्रांति के लिए सोपान भी बना। यह सच है, कि हर एक पीड़ित, शोषित व्यक्ति अन्याय के खिलाफ संघर्ष नहीं करता, परंतु काल परिस्थिति की उपज बना नेतृत्व या नेता सामाजिक अन्याय के प्रति विद्रोह खड़ा कर देता हैं। उसका रूप विस्तृत होता हैं। उसका संघर्ष व्यक्ति के लिए न होकर समाज के लिए होता हैं। अत: विस्तृतता, कल्याण, समाजहित, संगठन, सामूहिकता आदि उसकी विशेषताएँ होती हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था में भी परंपरा से प्राचीन काल से पीड़ित दलित समाज रहा हैं। समाज का एक अंग दलित समाज रहा हैं। आज धीरें-धीरें दलित समाज में भी क्रांति की प्रतिक्रियाएँ निर्माण हो रही हैं। सामाजिक विषमता, अन्याय. भेदाभेद, अभावग्रस्तता, हीनता के प्रति विद्रोह पनप रहा हैं। उन्हें जबसे इसका एहसास होने लगा, तबसे सामाजिक परिवर्तन

का कार्य शुरू हुआ। अब वे संगठित होकर क्रांति के पथ पर चल रहें हैं। सामाजिक परिवर्तनका पहिया घुमाने का कार्य शुरू हुआ हैं। उसे वे पूरा घुमाना चाहते हैं। अत: स्पष्ट हैं, सामाजिक क्रांति की प्रक्रिया अब चलेगी और अपने लक्ष्य तक पहुँचेगी। सामाजिक क्रांति अनिवार्य हैं। सामाजिक क्रांति जागरूक समाज का प्रतिक ही हैं। यह क्रांति सामाज जीवन का अंग ही हैं, ऐसा लगता हैं।

1) सामाजिक क्रांति - कारण, स्वरूप

''क्रांति - (Kranti) + revolution, complete or drastic change in a system, हरित - green revolution''[1]

भारत में समाजवादी विचारधारा या समाजवादी चेतना के लिए सबसे अधिक योगदान स्वतंत्रतापूर्व भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास इस बात का साक्षी हैं। 1917 में रूस में लेनीन के नेतृत्व में सामाजिक क्रांति हुई, उसके परिणाम स्वरूप विश्व में पहली बार किसी राष्ट्र में मजदूर-किसानों की वास्तविक सत्ता कायम हुई। यह सामाजिक क्रांति ऐसी घटना थी, जिसने संसार के शोषित, पीड़ित जनता के समक्ष सर्वतोन्मुखी मुक्ति के द्वार खोल दिए। इस क्रांति का प्रेरणा स्रोत मार्क्सवादी, समाजवादी विचार था। भारतीय समाज व्यवस्था में क्रांति के अंतर्गत कॉंग्रेस की नीति, समाजवादी दल की प्रवृत्तियाँ, भारतीय मजदूर, किसान तथा कम्युनिस्ट पार्टियों का साम्राज्यवाद विरोध, क्रांतिकारियों का कार्य आदि अनेक तत्व सहाय्यक सिध्द हुए। सामाजिक क्रांति के लिए राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपना-अपना योगदान दिया हैं। भारतीय राजनीति में पहले स्वराज्य या पहला समाज सुधार यही विवाद का विषय भी रहा था अर्थात सामाजिक परिवर्तन की विचार प्रक्रिया आजादी के आंदोलन से जुडी रही थी। इसी कारण राजनीतिक आंदोलन भी प्रभाव बना।

भारत जैसे पराधीन देश की जनता और उसके प्रबुध्द प्रतिनिधियों ने क्रांति का हृदय से स्वागत किया। इस स्थिति का सीधा असर हमारे राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ा। साम्राज्यवाद के विरूध्द छेडे गए अभियान के साथ-साथ देशी पूँजीवाद और सामंतवाद के स्वरूप पर भी लोगों की निगाहें उठी। किसान तथा मजदूर आंदोलनों को नई शक्ति प्राप्त हुई। साम्राज्यवादी शासकों ने जन आंदोलनों को दबाने की बहुत कोशिशें की परंतु असफल रहें। दमन जितनाही तेज हुआ, उतनी ही तेजी से जनता स्वतंत्रता के अभियान में शामील हो गई। साथ-ही-साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए सहयोग देने लगी।

स्वतंत्रतापूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में शोषित-शोषक संघर्ष के दो रूप रहें। (1) किसान-जमींदार संघ, (2) मजदूर-पूँजीपति संघर्ष। यह वर्ग संघर्ष पूर्णतः समाजवादी - यथार्थवादी हैं। समाजवाद के अनुसार यथार्थ सिर्फ उतनाही नहीं हैं, जो समाज की सतह पर उभरी हुई समस्याओं के रूप में पेश आता हैं, बल्कि उसका संघर्ष कहीं अधिक सामाजिक सत्य हैं। जो सतह के नीचे गहराई में ऱ्हासोन्मुख और प्रगतिशील शक्तियों के बीच में अनवरत रूप से गतिशील हैं। इसीप्रकार सामंतवाद, महाजनवाद तथा साम्राज्यवाद के हथकंडों ने दलित को सामाजिक जीवन के भीतर प्रगतिशील चेतना को जागृत करने में क्रांतिकारियों ने प्रेरित किया। जिसके परिणामस्वरूप ग्राम्य जीवन का वास्तविक रूप परिवर्तित हुआ। सामाजिक क्रांति ने भारतीय गांवों के भी हर क्षेत्र को प्रभावित किया। सामाजिक क्रांति ने भारतीय गांवों में तेजी से आए परिवर्तनों को देखा और उसे उजागर करने की सफल कोशिश की। भारत में समाजवाद और समाजवादी चेतना का प्रवेश स्वतंत्रतापूर्व काल से हो रहा हैं। समाजवादी समाजरचना का सपना आजादी के पहले से ही देखा था। रूसी क्रांति से प्रभावित सामन्य जनता रहीं तथा भारतीय राजनीति भी इससे जाग उठी। समाजवादी, मार्क्सवादी, मजदूर संगठन आदि विचारों का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन को भी इसी विचारधारा ने बल दिया। यहाँ स्पष्ट हैं, सामाजिक क्रांति के लिए राजनीतिक परिस्थिति का सहयोग मिला।

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य ग्रामजीवन के यथार्थ से संबंधित रहा हैं। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन समस्याओं से घिरा हैं। चाहें वह अर्थव्यवस्था का क्षेत्र हो, सामाजिक संबंधों का क्षेत्र हो या सांस्कृतिक जीवन का। आजादी के बाद तमाम नारों और कार्यक्रमों के बावजूद नीतियाँ इस तरह बनायी गई, जिसमें पूँजीवाद का पोषण हुआ। फलत: धन का केंद्रियकरण हुआ और गांवों की गरीबी भयावहता की हद तक पहुँच गई। प्रगति और परिवर्तन नाममात्र ही रहा। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन के आस्थाओं, विश्वासों, जीवन व्यापी संघर्षों और उनकी विकासोन्मुख चेतना का चित्रण किया हैं। डॉ. महेंद्र भटनागर के शब्दों में ,''काँग्रेसियों के दिलों में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोष के भाव आ गए हो पर इसमें कोई शक नहीं कि, ठेठ 1885 से 1905 तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी। वैध आंदोलन और अंग्रेजों की न्यायप्रियता के प्रति उनका दृढ अटल विश्वास ही।''[2]

सामाजिक क्रांति ने समूचे विश्व को हिलाकर रख दिया। विश्व के इतिहास में पहली बार किसी देश में 'सर्वहारा वर्ग' के नेतृत्व में शासन की स्थापना की गईं। इस क्रांति ने केवल भारत अपितु समूचे देशों में समाजवादी विचारों एवं जन आंदोलनों को जन्म दिया। 1919 में महेन्द्र प्रताप के नेतृत्व में एक भारतीय प्रतिनिधी मंडल लेनीन से मास्कों में मिला। लेनीन ने कहा - ''हमारे देश में टॉलस्टाय वगैरह ने धर्मप्रचार कर लोगों की मुक्ति की चेष्टा की थीं किन्तु उसका कोई नतीजा नहीं निकला। आप लोग भी भारत जाकर वर्ग संघर्ष का प्रचार करीये, मुक्ति का रास्ता साफ हो जाएगा।''[3] यहाँ स्पष्ट हैं, वर्ग संघर्ष से सामाजिक क्रांति का आरंभ होता हैं। लेनीन ने भी इसपर बल दिया और क्रांति में सफलता पायी।

प्रथम विश्व युद्ध बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। प्रथम विश्वयुद्ध का परिणाम संपूर्ण साम्राज्यवादी व्यवस्था पर पड़ा और 1917 की क्रांति के बाद विश्व में क्रांतिकारी लहर फैली। जिसने भारत में भी जनआंदोलन एवं विप्लव को ही जन्म नहीं दिया अपितु समस्त एशियाई देशों के जागरण को आगे बढ़ाया। मजदूरों, किसानों के

आंदोलन की वृध्दी, युवा आंदोलन का उदय आदि ने मिलकर कांग्रेस पर प्रभाव डाला। कम्युनिस्ट इंटर नेशनल द्वारा एम्.एन्.रॉय को भारत में किसान और मजदूर आंदोलन को संगठित करने के लिए भेजा गया।

1925-26 तक कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रिय समिति ने भारत के विभिन्न प्रांतों में स्थापना की। उनकी स्थापना के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में नई क्रांतिकारी शक्तियों का प्रवेश हो गया। कम्युनिस्टों के प्रभाव स्वरूप मजदूरों और किसानों के आंदोलन का जो सिलसिला आरंभ हुआ, वह भारत के आजाद होने तक चलता रहा। परिणामस्वरूप पूरे देश में सन 1937-38 में हड़ताल हो गयी। बंगाल में चटकल मजदूरों ने मजदूरी बढ़ाने के लिए हड़ताल की। उन दिनों बंगाल में फजलुल हक की सरकार थी, जिसकी दमनचक्र कार्यवाहियों के बावजूद भी यह हड़ताल चार मास चलीं। सरकारद्वारा आरोप लगाया गया कि "इस हड़ताल का कोई भी आर्थिक कारण नहीं हैं। कम्युनिस्ट नेता इसका इस्तेमाल भारत में क्रांति का रास्ता साफ करने में कर रहे है।"[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक क्रांति के लिए हड़ताल को एक हथियार के रूप में अपनाया गया। हड़ताल के कारण मजदूरों का संगठन मजबूत बना, उनमें अपने हक के प्रति चेतना एवं जागृति हो गयी।

भारतीय मुक्ति संग्राम के इतिहास में पहली बार मजदूर वर्ग , किसान वर्ग असहयोग आंदोलन में शामिल हुआ। मेहनतकश जनता के सभी हिस्सों की औद्योगिक हड़ताल, विशाल प्रदर्शन और रैलियां - राजनीतिक जीवन की आम बातें हो चुकी थीं। इसी के साथ सर्वहारा कार्यवाही का अपना रूप हड़ताल और जरूरी संगठनों का उदय हो रहा। साम्यवादी रूस के क्रांतिकारी परिवर्तन और कांग्रेसी नेतृत्व की समझौतापरस्त नीतियों से दुखी, आम कांग्रेसी कार्यकर्ता व्यक्तिगत आतंकवाद की तरफ या कम्युनिज्म की तरफ झुके। महान क्रांतिकारी भगत सिंह का झुकाव पूरी तरह कम्युनिज्म की तरफ था। भगतसिंह ने 1926 में 'लाह्रोर नौजवान सभा' और 1928 में 'नौंजवान भारत सभा' का गठन किया। इन कम्युनिस्ट और सोशालिस्ट कहे जाने वाले दोनों में आजादी की प्राप्ति यही प्रमुख लक्ष्य था। आजादी और समाजवाद की स्थापना यही कार्य एक साथ चलता रहा।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद के शब्दों में ''अतीत पर दृष्टिपात करने का एकमात्र प्रयोजन उन तत्वों को समझना है जिन्होंने ऐतिहासिक उथलपुथल के बावजूद हमें एक राष्ट्र के रूप में जीवित रखा हैं।''[5] यहाँ स्पष्ट हैं भारत देश में राजनीतिक उथलपुथल होती रही , सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन होते रहे, आर्थिक एवं औद्योगिक क्रांतियाँ होती रही परंतु उन्होंने भारत को एक राष्ट्र के रूप में सुरक्षित रखा हैं। देश तथा राष्ट्र की एकता खंडित होने नहीं दी। सामाजिक क्रांति ने भी देश की एकता एवं अखंडता को बल ही दिया। इसी कारण यह क्रांति होना आवश्यक एवं अनिवार्य हैं।

भारत की ग्रामव्यवस्था को ध्वस्त करके इंग्लैंडने अनजाने एक महान क्रांति का आरंभ किया। जिस अर्थ में मार्क्स ने उन परिवर्तनों को 'क्रांतिकारी' कहा था उन्हीं अर्थ में स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय राजव्यवस्था ने जिन परिवर्तनों की चेष्टा की वे भी क्रांतिकारी कहे जाने लगे। अंग्रेजी राज की क्रांति ने न सिर्फ कृषि-व्यवस्था में विघटन किया बल्कि मध्यम वर्ग को भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उत्तेजित भी किया।

भारत का मध्यम वर्ग शासक वर्ग से दूर रहा। उन्होंने अपने आपको अलग रखा, तो दूसरी ओर मजदूर, किसान मार्क्सवाद से प्रभावित रहे। औद्योगिक क्रांति ने जनजीवन की जड़े हिला दी। सामाजिक क्रांति को सहायता प्रदान की। परिणामतः परंपरा से पीड़ित दलित समाज भी जाग उठा। आर्थिक दुर्बलता, शोषण, बेगारी, महंगाई आदि क्रांति के प्रेरणा स्रोत बने। भारतीय जनता ने साम्राज्यवाद, पूँजीवाद का विरोध करते हुए आजादी का सूरज देखा। नये शासक के रूप में काँग्रेस को देखा, पंडित नेहरू को स्विकार किया। आजादी के पश्चात भी किसान-मजदूर का संगठन प्रभावी रहा। सामाजिक क्रांति के रूप में जातीयता मिटाना, दलितों में जागृति लाना, भाई-भतिजा वाद को हटाना, सांप्रदायिकता को नष्ट करना, जातीय एकता बनाए रखना आदि कार्य किया गया।

अखिल भारतीय स्तरपर संगठित समाजवादी आंदोलन की शुरूआत सन 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन से मानी जा सकती है। यहाँ से सामाजिक क्रांति की शुरूआत धीरे-धीरे होने लगी। किसान, मजदूर, दलित, पीड़ित, शोषित समाज को मुक्ति का मार्ग मिलना चाहिए यही इस क्रांति का कारण रहा। इसमें नए-नए बदलाव होते रहे। स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था लागू हुई किंतु इसके परिणाम अच्छे नहीं थे। फिर भी किसान, मजदूर, खेतिहर मजदूर, युवा, महिला, दलित आदि तमाम संगठनों में समाजवादी विचारों को लेकर आर्थिक, सामाजिक, परिवर्तन के क्षेत्र में संघर्ष करते रहें।

आजादी के साथ भारत सरकार, डॉ.बाबासाहब आंबेडकर, महात्मा गांधी, शाहू महाराज आदि जैसे कई व्यक्ति और संस्थाओं ने कार्य किया। महात्मा फुले, महर्षि कर्वे, वि. रा. शिंदे, सयाजीराव गायकवाड आदि ने इसी कार्य की आजादी के पहले ही नींव डाली थीं। राजनीतिक प्राप्ती, सामाजिक सुधार, भौतिक विकास, कृषि-प्रगति आदि के साथ सामाजिक जीवन में परिवर्तन का दौर चलता रहा और आर्थिक समानता पर बल दिया गया। बाल-विवाह बंद हुए। विधवाओं का मुंडन करना बंद किया। नारी शिक्षा का आरंभ हुआ। किसान-मजदूरों को अपना अधिकार मिला। सामाजिक क्रांति ने पूरे देश में परिवर्तन किया।

निष्कर्ष :- अत: स्पष्ट है रूस की क्रांति, आजादी का आंदोलन, मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव समाजवादी समाज रचना का सपना, समाज-सुधारकों का कार्य, राजनीतिक परिस्थिति, प्रथम विश्वयुद्ध, नई संस्कृति का प्रभाव आदि के कारण सामाजिक क्रांति प्रभावी बनी। सामाजिक जीवन में अमूलचूल परिवर्तन लाने का कार्य शुरू हुआ। नारी शिक्षा, दलित मुक्ति, शोषितों का संगठन, जातीयता को मिटाना, सामाजिक समता, समान न्याय आदि रूप में सामाजिक क्रांति होने लगी। आजादी आंदोलन का एक अंग यही क्रांति बनी। आजादी आंदोलन को बल गति देने का कार्य इसी क्रांति ने किया। इसी कारण यह क्रांति महत्वपूर्ण रहीं हैं।

2) सामाजिक क्रांति के दूत - डॉ. बाबासाहब आंबेडकर :-

"जो जहाज से टकराये उसे तूफान कहते हैं।

जो तूफान से टकराये उसे इंसान कहते हैं।"

सामाजिक क्रांति के दूत के लिए यह कथन सही साबित हुआ। डॉ.बाबसाहब आंबेडकरजी का जन्म करीब सौ वर्ष पूर्व महार जाति के एक अतिसाधारण परिवार में, महाराष्ट्र के एक छोटे से गांव अम्बावडे में 14 अप्रैल 1891 को, एक फौजी सुबेदार रामजी राव की चौदहवी एवं अंतिम संतान के रूप में, भोली-भाली महिला भिमाबाई की कोख से हुआ था। कहा जाता है कि, महार ही महाराष्ट्र राज्य के मूल निवासी थे। वे लोग हालांकि अछूतों की श्रेणी में आते थे। किंतु महार जाति वर्चस्व रखनेवाली थी। इसलिए सागर तट पर बसे इस प्राकृतिक, सौंदर्यवाले स्थान को "महार + राष्ट्र" = महाराष्ट्र नाम दिया गया। इसी महाराष्ट्र के एक छोटेसे फौजी श्री मालोजी सकपाल का पोता तथा सूबेदार रामजी का यह बालक था। आगे चलकर छुआछूत, गरीब-अमीर, छोड़े-बड़े के भेदभाव को मिटाने एवं देश की भावी पीढी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत सिध्द हुआ।

एक गरीब परिवार में जन्म लेने के बाद दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में ही माँ का स्वर्गवास हो गया। उनका बचपन बहुतही कठिनाइयों, विपदाओं, मुसीबतों एवं आर्थिक अभाव में गुजरा। इसके कई कारण थे, पहला कारण था अछूत जाति में पैदा होना और वह भी ऐसे काल में जब अछूतों को इंसान मान लेना भी बहुत बड़ी बात थी। उस वक्त की व्यवस्था का आम्बेडकर को शिकार होना ही पड़ा। दूसरा कारण था एक गरीब परिवार में जन्म लेना और वह भी चौदहवी संतान के रूप में। माँ के स्वर्गवास के बाद घर में कमानेवाले केवल पिता थे और परिवार बड़ा था। आर्थिक स्थिति भी डांवाडौल थी। 14 वीं संतान होने के कारण पिताने ऐसी स्थिति में बालक आंम्बेडकर की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इन सब परिस्थितियों के बावजूद 9 वर्ष की आयु यानि सन 1900 में राजकीय माध्यमिक स्कूल, सतारा में प्रथम

कक्षा में प्रवेश दिया गया। बालक का नाम ''भिवारामजी आम्बावाडेकर'' रखा गया। हालांकि गोत्र संकपाल किंतु उस इलाके के लोग अपने नाम के आगे गांव का नाम लगाते थे। अत: उनका नाम स्कूल में भिवारामजी आम्बावाडेकर दर्ज कराया गया। नाम लंबा - चौड़ा था। अध्यापक को इतना लम्बा नाम पुकारने में तकलीफ होती थी। इसलिए उन्होंने आंम्बेडकर नाम रख दिया। बालक आंम्बेडकर को घर की दहलीज के बाहर निकलते ही ''छुत-अछूत'' के भयानक भेद-भाव से संघर्ष करना पड़ा। पाठशाला घर से दूरी पर थीं, अत: उन्हें बैलगाडी का सहारा लेना पड़ा, परंतु बैलबाडीवाले ने उन्हें उसकी गाडी में बैठने से इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर जवाब दिया कि, वे अवर्ण हैं। जैसे-जैसे समय बीतता गया उनको इसका कारण समझ में आता गया और इसी ने उनके दिमाग में कट्टर पंथी लोगों के खिलाफ बगावत एवं घृणा का बीज बोया। यह स्थिति सभी अन्य अवर्णों की भी थी।

मैट्रिक पास होने के बाद एलफिस्टन कॉलेज में प्रवेश ले ही लिया। वहाँ उन्हें पच्चीस रूपया माहवार की छात्रवृत्ति भी प्राप्त हो गई। एक प्राध्यापक ने उनपर मेहरबानी करके पुस्तके एवं पहनने के लिए कपड़े उपलब्ध करा दिए। अछूत होने की वजह से समय-समय पर अपमानित एवं हेय दृष्टि से देखे जाने का शिकार तो होना ही पड़ता था। उन्होंने अपना संपूर्ण ध्यान अध्ययन की ओर केंद्रीत कर दिया और अंग्रेजी, पर्शियन भाषाओं के साथ सन 1912 में बी.ए.(स्नातक) की परीक्षा उत्तीर्ण कर दीं। महार जाति के वे पहले स्नातक थे। 14 वर्ष की अल्पायु में रमाबाई नाम की 9 वर्ष की बालिका से उनकी शादी हो गयी। अत: उसके भरन-पोषण के ख्याल ने भी उन्हें नौकरी करने के लिए मजबूर किया। उसके बाद 1913 में एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने हेतु अमेरिका के कोलम्बिया विश्व-विद्यालय में प्रवेश लिया। जून 1919 में उन्होंने एम.ए. अर्थशास्त्र की उपाधि प्राप्त कर ली। वे पहले महार थे जिन्हें विदेश में अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अमेरीका से पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात वे पढ़ाई करने हेतु लंदन गये किंतु महाराजा द्वारा छात्रवृत्ति निरस्त कर देने से उन्हें पुन: भारत लौटना पड़ा।

जुलाई 1917 में बड़ोदा रियासत में महाराजा के मिलट्री सेक्रेटरी के रूप में उन्होंने नौकरी कर ली। वे तो उन्हें वित्त मंत्री तक का पद देना चाहते थे किंतु कुछ कट्टरपंथी हिंदुओंद्वारा उनके विरूध्द किए गये तिरस्कार ने उन्हें इस महत्वपूर्ण पद को भी छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। अछूत होने का दंड भुगतना पड़ा यहाँ स्पष्ट है दलित जाति में पैदा होने के कारण आंबेडकरजी को उच्च पदसे भी दूर रखा गया। जाति ही पद का आधार बनी थी ऐसा लगता है।

सन 1953 में उस्मानियाँ विश्वविद्यालय द्वारा दीक्षांत समारोह में डॉ. ऑफ लॉ की मानद उपाधि प्रदान करते हुए विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय ने कहा, ''डॉक्टर आम्बेडकर एक महान व्यक्ति, सफल वकील, जाने-माने संसद सदस्य तथा दलितो एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के मसीहा हैं। जिन्हें भारत के गरीबों की सेवा एवं उत्थान हेतु किए कार्यों के लिए सदैव याद किया जाएगा।''[6] यहाँ यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि डॉ. आम्बेडकर विश्व के उन गिने-चुने व्यक्तियों में से एक थे, जिन्हें इतनी कम उम्र में बहुतसी उपाधियों को हासिल करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इतनाही नहीं, अनुसूचित जाति के तो वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने आप को इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, विधिशास्त्र एवं संविधान के एक जाने माने विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित किया।

कानून के माध्यम से ही सामाजिक शांति, सामाजिक न्याय एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना आंबेडकर ने की। एक मजदूर रात-दिन अपना खून पसीना एक कर तालाब का निर्माण करता है परंतु उसी तालाब से उसे पानी लेने अथवा उसी तालाब में स्नान करने से अछूत कहकर मना कर दिया जाता है। उसीप्रकार एक अस्पृश्य कुएँ से पानी खिंचने के लिए मशक बनाता है किंतु उसी मशक से खींचे गए पानी को पीने-से उसे वंछित किया जाता है। महज इसलिए की वह 'अछूत' है। इन प्रश्नों ने उनके मन में कट्टर पंथी हिंदुओं के प्रति घृणा को और अधिक मजबूत कर दिया। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि, अन्याय, असमानता, छुआछूत एवं अधर्म के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। उनका विचार था कानून को अहिंसात्मक होना चाहिए किंतु अहिंसात्मक तरीके से व्यक्ति को उसके अधिकार नहीं मिल पाते। इसी समय

कानूनरूपी अस्त्र को हिंसात्मक तरीके से अपनाने के लिए भी नहीं चूँकना चाहिए। यहाँ पर महात्मा गांधी से उनका विराध शुरू होता है। गांधीजी प्रत्येक समस्या का हल अहिंसात्मक तरीके से सुलझाना चाहते थे। इस प्रक्रिया में समय बहुत अधिक लगता देखकर डॉ. आंबेडकर ने गांधी को विरोध करना स्विकार कर लिया। दलित एवं पिछड़े वर्ग को मात्र हरिजन नाम देने से समस्या का हल संभव नहीं है। जाति-प्रथा को समाप्त कर देने से इस समस्या का हल निकलेगा, यही उनकी मान्यता थी।

गांधीजी गरिबों, दलितों एवं शोषित समाज को उनके अधिकार दिलाने के प्रबल पक्षधर थे किंतु दोनों महान व्यक्तियों के लक्ष्य तक पहुँचने के रास्ते अलग-अलग थे। डॉ. आंबेडकर ने गांधी को गलत समझा। जब की विश्व में गांधी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सिरपर मैला ढ़ोने जैसी घृणित प्रथा का जमकर विरोध किया। उन्होंने यह भी कहा कि - ''स्वराज्य तो ईश्वर भी नहीं दे सकता, उसके लिए परिश्रम करना पड़ेगा।'' यहाँ पर गांधीजी ने दलितों को, शोषितों को अपने हक के लिए संघर्ष करने को कहा था।

आंबेडकरजी को शोषित, पीड़ित दलितों के लिए सवर्णों के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। उस समय ब्राह्मण, ब्राह्मणेतर समाज अछूतों को समान हक देने के लिए तैयार नहीं था। उसके लिए उन्होंने भरकस कोशिश की। आंबेडकर की मंदिर प्रवेशवाली घटना, महाड सत्याग्रह, कालाराम मंदिर प्रवेश, धर्म परिवर्तन आदि घटनाएँ प्रतिनिधि है। उनकी आवाज एक दलित तथा अछूत अवर्ण की आवाज नहीं थी बल्कि लाखों-करोडों लोगों की आवाज थी। उसे कोई आसानी से नही दबा सका। इस सत्य को न केवल भारतीय नेताओं ने बल्कि अंग्रेज सरकार ने भी स्विकार किया था। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में - ''डॉ.बाबासाहब आंबेडकर सवर्णों के हर एक अन्याय के खिलाफ किए हुए आंदोलन के प्रतिक है।''[7] उन्होंने अपने जीवन में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा', 'बम्बई विधान परिषद के सदस्य', 'बम्बई प्रांतीय विधानसभा', 'बम्बई राज्य तुच्छ वतनदार संघ', 'बम्बई तुच्छ ग्रामीण वतन समापन

अधिनियम', 'वाइसराय कार्यकारी परिषद', 'श्रम - मंत्रालय', 'स्वतंत्र श्रमिक दल', 'केबिनेट मिशन प्लान' में एक सदस्य के रूप में काम किया। महारों को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए 'महार-वैतन बील' पेश किया। 'वतनप्रथा' को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त करने का प्रयास किया।

कानून मंत्री के रूप में बाबासाहब ने केवल अनुसूचित जाति, जनजाति के व्यक्तियों तथा हिंदुओं के लिए विशेष 'हिंदु कोड़ बिल' तैयार किया। उसमें योग्यता के आधारपर अधिकारों की प्राप्ती, महिला का संपत्ति में संपूर्ण अधिकार, पुत्री को भी संपत्ति में अधिकार, महिलाओं के लिए भी तलाख के प्रावधान आदि को शामिल किया। देश में रहनेवाले हिंदु अलग-अलग कानूनों से शोषित है। इसलिए हिंदु विधि सभी हिंदुओं के लिए समान होनी चाहिए। जिसमें हिंदुओं के विवाह, तलाख, गोर, अवयस्कता, संरक्षकत्व, हिंदु अविभाजित संपत्ति, स्त्रीधन, उत्तराधिकार, भरण-पोषण तथा अन्य कानूनोंपर संहिताबद्ध विचार किया। समस्त भारतीयों ने उन्हें 'आधुनिक मनु' के रूप में मान्यता भी दी।

सामाजिक क्रांति के दूत ने समाज को ''शिक्षित बनो - संगठित बनो - संघर्ष करो'' के सिध्दान्त पर चलने का आवाहन किया। उन्होंने चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों को निशुल्क शिक्षा दिलाने की बात कहीं। उनकी मान्यता थी कि समाज संगठित तभी होगा जब वह शिक्षित होगा क्योंकि शिक्षित होनेपर ही उसे अपने भले-बुरे का ज्ञान हो जाएगा। वह संगठित होकर फूट डालनेवाली शक्तियों के खिलाफ संघर्ष कर सकेगा। इसी दृष्टि से उन्होंने दलित संगठन और दलित शिक्षा पर बल दिया। अंत में इसी कार्य में वे सफल भी रहे।

आज देश में हजारो-लाखों की तादाद में अस्पृश्यता को लेकर मुकदमे विभिन्न न्यायालयों में विचाराधीन है। कृषक को मारपीट करना, उनके खेतों से हटाया जाना, हरिजनोंद्वारा मैला सिरपर ढोना, हरिजन युवतियों के साथ बलात्कार होना, अनुसूचित जाति वर्ग के दुल्हे की घोड़े पर बारात नहीं ले जाने देना, गाँव के कुएँ या तालाब पर पानी नहीं भरने

देना, छुआछूत न हो इसका खयाल रखना, सवर्ण हिंदु के मकान के बाहर अथवा गाँव या शहर के मुख्य रास्ते से नहीं निकलने देना आदि कई घटनाएँ आज भी दिखाई देती है। 21 वी सदी में वैज्ञानिक प्रगति हो चुकी है मगर समाज की मानसिकता अभी तक पूरी तरह से बदली नहीं है, ऐसा लगता हैं। सामाजिक क्रांति में भी अभी तक सफलता नहीं मिली, चाहे वैज्ञानिक प्रगति भले ही हो।

अत: स्पष्ट है कि रामकृष्ण, महावीर, गौतम बुद्‌ध, गांधी, फुले, नेहरू, सयाजीराव गायकवाड , कर्वे एवं आंबेडकर के इस महान देश को दुनिया ने कभी ''सोने की चिड़िया'' कहा था। इसे विकसित रूप में देखना इसलिए इसे के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र बनाना, उसकी एकता एवं अखंडता को कायम रखना आवश्यक है यही प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। साथ-ही-साथ ऊँची नीची जाती, गरीब-अमीर, छूत-अछूत के भेदभाव से ऊपर उठकर भारत के एक सच्चे नागरिक के रूप में कार्य करे और गर्व से कहे कि 'मैं भारतीय हूँ' तभी यह देश गांधी और आम्बेडकर के सपनों का देश होगा ऐसा लगता हैं।

डॉ. आम्बेडकर का जीवन दलित समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत रहा हैं। उनका जीवन संघर्ष की कहानी हैं। आज भी दलित समाज डॉ. आम्बेडकरजी का सपना पूरा करने के लिए कार्यमग्न रहा हैं। अपने जीवन की सार्थकता सामाजिक परिर्वन में ही मानते हैं। चैत्य भूमि उनके लिए तीर्थस्थल बना हुआ हैं।

निष्कर्ष :- अत: स्पष्ट हैं, सामाजिक क्रांति के रूप में डॉ. आम्बेडकरजी का योगदान महत्वपूर्ण हैं। उनके जीवन की हर एक घटना प्रतिकात्मक रही हैं। आज के साहित्य में भी साहित्यिकारों ने आंबेडकरी विचारों के वाहक पात्र बनाकर सामाजिक क्रांति में योगदान दिया हैं। स्पष्ट है, समाज सेवक, सामाजिक संस्था, राजनीतिक नेतृत्व, साहित्यिकारों का कार्य आदि के कार्य के फलस्वरूप सामाजिक क्रांति हो रही हैं। इसी कारण यह क्रांति भी सफल, प्रभावी, सशक्त बन रही हैं। ऐसा लगता है।

3) साहित्यिकारों का कार्य :-

साहित्यिकार युग की चेतना से अवश्य प्रभावित होता हैं। इसलिए युग का प्रतिबिंब साहित्य में होता हैं। समाज में अनेक प्रकार के भावों और विचारों के दर्शन होते हैं। परिणामत: साहित्य में भी विविधता दिखाई देती हैं। साहित्य समाज जागृती का कार्य करता हैं। डॉ. लिलावती देवी गुप्ता के शब्दों में ''साहित्य तो वह कला है, जो समाज में जागृति एवं स्फूर्ति लाए जो जीवन की यथार्थ समस्याओं पर प्रकाश डालें।''[8] इसप्रकार साहित्य राष्ट्र के समुचित उत्थान में सहाय्यक होता है। साहित्यिकार और साहित्य की प्रतिबध्दता स्वाभाविक रूप से समाज सापेक्ष होती है। साहित्यिकार भी समाज और समस्या का यथार्थ रूप में चित्रण करता है, अत: उसे ''चितेरा'' कहा गया है।

साहित्य का संबंध साहित्यिकार से होता है और साहित्यिकार का समाज से होता है। साहित्यिकार का व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है, पहला रूप मानव रूप है और दूसरा रूप साहित्य का है। साहित्यिकार होने के नाते वह अपने प्रथम रूप का प्रयोग साहित्य के हित में करता है। इन अर्थो में वह युगचेता होता है। इसलिए वह यथार्थ को पहचानता है, उसे समझता है तथा उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नवीन जागरण से प्रभावित उसी चेतना के नव-नव मूल्यों का सृजन साहित्यिकार साहित्य के माध्यम से करता है। असंसारिक, वितरागी एवं संन्यासी होते हुए भी वह ठीक इनसे विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण साहित्य का सृजन सर्वहिताय करता है। वह युगनिर्माता के रूप में युगचेतना की स्थापना साहित्य के माध्यम से करता है। इस तरह युगचेतना और साहित्यिकार एकदूसरे से संबध्द होते है। साहित्य का निर्माता साहित्यकार, राष्ट्र एवं मानवता के प्रति स्वंय को आबध्द समझता है। इसलिए वह इनके उत्थान के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिए तत्पर रहता है। वह युगचेतना से प्रभावित होकर समाजोध्दार के लिए साहित्यरूपी अमृतोपम वर्षा करता है। वह समाज को साहित्यरूपी संजीवनी शक्ति समर्पित करता है।

प्रेमचंद के शब्दों में "साहित्यिकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यिकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देशबंधुओं से विकल हो उठती है और तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके मन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।"[9] साहित्य मानवीय इतिहास का सच्चा लेखा-जोखा है और साहित्यिकार उस इतिहास का विधाता है। मानवी जीवन पर साहित्य का अधिक प्रभाव होता है क्योंकि साहित्य अपने देश-काल का प्रतिबिंब होता है, उसे दर्पण कहा गया है।

साहित्यिकार अपने विचारों को साहित्य के माध्यम से स्पष्ट करता है। प्रेमचंद भी एक जाने-माने साहित्यकार हैं। इनके साहित्य में संसार के सभी प्रकार के इन्सान मौजुद हैं। इनमें दलित पात्रों की गिनती अस्वाभाविक नहीं है। प्रेमचंद का साहित्य दलित समस्याओं पर लिखा हुआ साहित्य है। इनमें दलित-पात्रों के जीवन के यथार्थ से किसी भी सहृदय का दिल द्रवित होता है। 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' उपन्यास दलितों की समस्या को यथार्थ रूप में चित्रित करते है। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', निराला का 'निरूपमा', 'कुल्लीभाट', नागार्जुन का 'दुःखमोचन', यज्ञदत्त शर्मा का 'बदल्ती राहें', जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना', मदन दीक्षित का 'मोरी की ईंट', दया पवार का 'अछूत', रेणु का 'परती परीकथा', वृंदावनलाल वर्मा का 'भुवन विक्रम', सितारामशरण गुप्त का 'अंतिम आकांक्षा', उग्रजी का 'शराबी', 'बुधुआ की बेटी', शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' आदि कई उपन्यास दलितों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आँचलिक स्थिति को दर्शाते है।

दलितों की स्थिति उनकी समस्याएँ, उनकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति, रूढ़ि परंपरा, मान्यता, उनका होनेवाला शोषण, जीवनयापन, उनमें उत्पन्न चेतना, नारी की स्थिती आदि सभी बातों का यथार्थ वर्णन किया है। प्रगति से दूर, अज्ञान से प्रभावित,

अंधविश्वास के शिकार, उच्चवर्ग के आतंक से आतंकीत दलित अपना जीवन किस हालत में बीताते है उसे स्पष्ट करने में यह उपन्यास सफल लगते हैं। यहाँ स्पष्ट है, उपन्यासकारोंने अपनी कलम से दलितों की व्यथा को वाणी देने का प्रभावी कार्य किया है। उपन्यासों में चित्रित पात्र प्रगतिवादी विचारों के वाहक है। साहित्यिकारों ने दलितों में चेतना निर्माण करने का कार्य किया है। जानवरों से बदत्तर जीवनयापन करने के लिए दलितों को मजबूर किया जा रहा है, ऐसा लक्षित होता है परंतु आलोच्य उपन्यासों के पात्र अब यह शोषण का दमनचक्र फेंकना चाहते है।

'रंगभूमि' का सूरदास चमार जाति का होने पर भी गांव के लिए चारागाह जमीन की रक्षा करता है। औद्योगिकरण का विरोध करता है। अपने जाति की व्यथा स्पष्ट करने में सक्षम रहा हैं। 'कायाकल्प' में जमींदारों के अत्याचार, हंटरों से पीटाई, मजदूरों की स्थिति का चित्रण करते हुए ठाकुर के अत्याचारों का विरोध करनेवाले चमार युवा यहाँ चेतित पात्र है। यहाँ स्पष्ट है कि अब यह समाज अन्याय, अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेगा, संगठित होकर अन्याय का मुकाबला करेगा। 'कर्मभूमि' में दैन्य, गरीबी, अशिक्षा, अभावग्रस्तता में जीवन जीनेवाले चमार जनजाती की कथा है। यहाँ के लोग अमरकांत के नेतृत्व में अपना विकास करते है। यहाँ का सुमेर आदर्श पात्र है, उसे देवता कहा गया है, तो 'गोदान' का हरखू, सिलिया, विद्रोही पात्र है। यहाँ आंतरजातीय संबंध, नारी का विकास आदि का विचार किया है।

राहुल सांकृत्यायन के 'जय यौधेय' का अर्जुन जातीयता, भेदाभेद के टुकड़े करना चाहता है। निराला का 'निरूपमा' का कुमार पढ़ा-लिखा होकर भी जातीगत धंधा करना चाहता है। 'कुल्लीभाट' का दलित परिवार बच्चों को पढ़ाना चाहता है। नागार्जुन के 'दु:खमोचन' का चमार मुखिया सार्वजनिक समारोह में शामिल होता है। 'परती परीकथा' की चमारिन सुबंश रजिस्टर्ड विवाह करती है। जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' के चमार युवा अन्याय के खिलाफ बायकॉट का आधार लेते है। गाँव के अछूत अब पीटाई बर्दाश्त नहीं करते।

यहाँ स्पष्ट है कि साहित्य युग का परिचय कराने में सक्षम होता है। साहित्यिकार परिस्थितियों से विशेष प्रभावित होता है। साहित्यिकार साहित्य का प्रणेता होता है। वह राग-द्वेष, माया-मोह, अपना-पराया आदि अनेक प्रकार की भावनाओं से बहुत दूर होता है। ऐसे साहित्यिकार की चेतना देश एवं काल से परेह होता है। वह युगों युगों की विगलित मान्यताओं को ध्वस्त करता हुआ, देवनदी के समान सबको तृप्ति प्रदान करता हुआ, पथप्रदर्शन करता है। वह इतिहास का मात्र अनुगामी न होकर उसका निर्माता भी होता है। वास्तविक साहित्यिकार आदर्श एवं यथार्थ दोनों प्रकार के मूल्यों का प्रतिस्थापक होता है, ऐसा लगता है।

साहित्यिकारों ने नई चेतना से प्रभावित होकर बदलती सामाजिक मान्यताओं का चित्रण किया हैं। सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक क्रांति, दलितों में उत्पन्न चेतना, नई विचारधारा, नई मान्यताएँ साहित्य में रेखांकित की हैं। यह साहित्य का नया रूप प्रगतिशील समाज का दर्पण लगता हैं। साहित्यिकारों ने अपनी रचनाओं में आम्बेडकरजी के विचारों को प्रतिबिंबित किया हैं। धर्म परिवर्तन के साथ मिशनरी प्रवृत्ति पर भी प्रहार किया हैं। शोषित-पीड़ित दलित सामाजिक क्रांति के साथ प्रभावित हो रहा हैं। अब उसमें नई चेतना आ रही हैं। साहित्यिकारों ने उसे भी स्पष्ट किया हैं। सरकारी सुधार नीति, विकास योजना से दलित कितने लाभान्वित हो रहे है, कितनी समस्याएँ हल हो चुकी है? स्वाधीन भारत में दलितों का स्थान क्या है ? संविधान से क्या लाभ हुआ ? आदि प्रश्नों की ओर साहित्यिकारों ने अंगुली निर्देश किया हैं। अतः स्पष्ट है, सामाजिक समता, न्याय, समानता के पक्ष पर साहित्यिकार रहें हैं। उसी दृष्टि से उन्होंने कार्य किया है, ऐसा लगता हैं।

4) आलोच्य उपन्यासकारों का कार्य :-

शिवशंकर शुक्ल का 'मोंगरा', भगवतीप्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गाँव', नरेंद्रदेव वर्मा का 'सुबह की तलाश', राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास' आदि आलोच्य उपन्यासों में दलित जीवन, दलित समस्या, दलितों में उत्पन्न नई चेतना, उनका होनेवाला

शोषण, उनकी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति आदिं पर भी प्रकाश डाला हैं। नगरों से दूर, प्रगति से अछूता रहा दलित आज धीरें-धीरे शिक्षित होकर, संगठित बनकर संघर्ष कर रहा हैं। इसपर भी यहाँ प्रकाश डाला हैं।

शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' (1970) में छत्तीसगढ़ में स्थित दलित, कृषक, ब्राह्मण आदि का जीवन चित्रित हैं। ग्रामजीवन में स्थित सामाजिक, धार्मिक कट्टरता को स्पष्ट करते हुए ब्राह्मण मंगलू को हल चलाने के कारण जाति से बहिष्कृत करने की घटना चित्रित की हैं। यहाँ स्पष्ट है, जातीयता के शिकार सिर्फ दलित ही नहीं ब्राह्मण भी रहा हैं। आज दलित समाज में परंपरागत व्यवसाय छोड़कर सरकारी ऋण सुविधा का लाभ उठाकर नया धंधा करनेवाला चमार चरणदास मुर्गी पालने का धंधा करता हैं। उपन्यासकार ने ग्राम अंचल में दलितों में उत्पन्न नई मान्यता को स्पष्ट किया हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमी के अंतर्गत उनमें स्थित अंध:विश्वास, रूढी-प्रथा, परम्परा, लोकगीत, लोककथा, संस्कार, देवी-देवता, विवाह-प्रथा, दिवाली, होली उत्सव आदि का भी चित्रण किया है। दलित जीवन की झाँकी स्पष्ट करने का प्रयास किया। आर्थिक दशा में होनेवाला सुधार, अवैध धंधे का विरोध करने की नीति, परंपरागत धंधा छोड़कर नए व्यवसाय का स्विकार करने की प्रवृत्ति, जमींदारों के अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति, आदि का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। सामाजिक परिवर्तन के लिए मंगलू, चरणदास और मोंगरा का योगदान महत्वपूर्ण लगता हैं। अवैध धंधे की अपेक्षा श्रम का महत्व स्पष्ट करना, सरकारी योजना का लाभ उठाकर समाज मान्य धंधा करना और जिविका चलाना आदि संदेश यहाँ दिया है। इससे सामाजिक ढाँचा भी परिवर्तित हो सकता है। परिणामत: सामाजिक क्रांति की नींव डाली जा सकती है, ऐसा लगता है।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गाँव' (1972) में विंध्याचल का चित्रण है। देवगांव और बेवहारी गाँव में स्थित जातीयता, दलित जीवन, जातीपंचायत का प्रभाव, दलितों का व्यवसाय, खान-पान, भौतिक असुविधा, रूढ़ि-प्रथा, उत्सव-पर्व आदि का

वर्णन किया है। जूते बनाना, खाल बेचना, मछलियाँ पकड़ना आदि व्यवसाय करनेवाले दलित है। दलितों का पनघट अलग होना, भगवान के मंदिर में दलितों को प्रवेश न देना, दलितों के दर्शन से भगवान का अपवित्र हो जाना ऐसी मान्यता का होना, शिक्षा व्यवस्था में दलितों को अधिकार न होना, पाठशाला के बाहर बिठाना आदि का वर्णन किया है। जातीयता का विरोध करते हुए सुग्रीव मंदिर को भगवान का दरबार मानकर वहाँ कोई छोटा बडा नहीं है, सबका समान अधिकार है ऐसी वकालत करता है। अरविंद चमरहाटी में प्रौढ शिक्षा का केंद्र शुरू करके दलितों में शिक्षा के प्रति चेतना जगाता है, साथ-ही-साथ 'क्रांतिकारी मोर्चा' की स्थापना करके चुनाव भी लड़ता है। दलितों के विकास के लिए सहकारी उपभोक्ता भांडार की शुरूवात करता है। उसका उद्‌घाटन चमार के हाथ से करवाता है। देवगाव और बेवहारी गाँव की व्यवस्था में भी जातीयता दिखाई देती है। उसपर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। अरविंद, सुग्रीव, फगुवा पंडित जैसे प्रगतिवादी विचारधारा के पात्रों के माध्यम से सामजिक क्रांति की गूँज उठयी है। ये सभी पात्र उपन्यासकार के नए विचारों के वाहक ही है। मजदूरी की उचित माँग करना, हड़ताल करना, मोर्चा बनाना, चुनाव लड़ना, मंदिर सबके लिए खुला करना आदि घटनाएँ इसके प्रमाण है। 'राजनीतिक परिवर्तन का चित्रण करके एक नये आयाम का उद्‌घाटन किया है तथा समान अधिकार की माँग एक नये विचार का प्रतिपादन किया है।

प्रस्तुत अंचल में स्थित गोदावल मेला, शिवपार्वती ब्याह, दुर्गासप्तशती, विभिन्न उत्सव, रूढ़ि परंपरा, अंध:विश्वास, शोषण के आयाम, लोकगीत, लोककथा, दलित जीवन, उनकी समस्या, सरकारी विकास योजना, कुएँ की मरम्मत के लिए सरकारी सहायता, सरकारी उपभोक्ता भांडार का उद्‌घाटन आदि का यथार्थ चित्रण किया है। यहाँ का अरविंद, सुग्रीव दलितों में नईं चेतना, अधिकार की भावना जगाने में सफल रहे है, ऐसा लगता है।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' (1972) में छत्तीसगढ़ के अमोलीडीह गांव की शोषित, उपेक्षित, जनजीवन की छवियाँ दिखाई देती है। जातीयता, भेदाभेद, शोषण वंशाभिमान, कुलीनश्रेष्ठता का बोलबाला आदि का चित्रण किया है। यहाँ का दलित शोषित

रहा है। मगर आज धीरे-धीरे उसमें नईं चेतना जाग उठी है। अपने अधिकार की भावना उसमें पैदा हो रही है। उसपर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। आंदोलन, संगठन, एकता पर यहाँ बल दिया है। चमार के लिए मंदिर प्रवेश नहीं था, तब फगुवा उसका विरोध करते हुए भगवान को देवता नहीं बल्कि शैतान मानता है। मंदिर को खुला करना मानवतावादी दृष्टि से दलित को समान मानना, उन्हें उनके अधिकार देना, चमार के घर में भोजन करना, उनके बर्तन माँजना, उनके लिए शिक्षा व्यवस्था करना आदि घटनाएँ समाज परिवर्तन के प्रतिक है।

चमारपर कोडे बरसानेवाले ठाकुर रणधीर को फटकारने वाला सोमेश्वर कहता है ''आप आदमी पर जो अत्याचार कर रहे है वो पशुओं पर भी नहीं किया जाता।'' पाप पुण्य का धार्मिक रूप स्पष्ट करते हुए चमार सोमेश्वर के बर्तन मांजने से पाप होता है और चमार के दर्शन से भगवान अपवित्र होता है, ऐसी विकृत मान्यताओं को भी यहाँ ठुकरा दिया है और यह स्पष्ट किया है, भगवान सबका, सबके लिए सुखदायी होता है। अध्यापक सोमेश्वर दलित बस्ती में शिक्षा व्यवस्था शुरू करता है। ठाकुरों की कुनीति से प्रभावित दलित जनजीवन रहा है। उसे भी यहाँ स्पष्ट किया है। ठाकुर के अवैध संबंध से कोख बढ़ने से उसका दोषी सोमेश्वर को बताना इसका प्रमाण है। दलितों का संगठन बनाकर कार्य करनेवाला सोमेश्वर, फगुवा, उनकी माँ आदर्श पात्र लगते है। सामाजिक क्रांति के लिए उनका योगदान यहाँ महत्वपूर्ण लगता है। सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा की आवश्यकता है उसे भी यहाँ स्पष्ट किया है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' (1980) में पहाड़ी एवं जंगली गांव दमकड़ी का जनजीवन चित्रित है। हरिजन और आदिवासी लोग वहाँ रहते है। उनकी खास किस्म की झोपड़ियाँ इनकी पहचान है। चमार नथुराम फौजी है, उनकी यह कहानी है। दलितों के लिए पीने के पानी की सुविधा नहीं है, छुआछूत की बिमारी रही, इससे यहाँ स्पष्ट है कि दलित बस्ती अभी तक भौतिक सुविधा से दूर रही है। उसपर उपन्यासकारने प्रकाश डाला है। साथ-ही-साथ अस्पताल चिकित्सालय की उपलब्धि न होने के कारण ओझा का प्रभाव बढ़ रहा है। जाती पंचायत, न्याय व्यवस्था के रूप में कार्य कर रही है तथा जंगली जानवरों का आतंक अभी-

भी जारी है इसपर यहाँ विचार किया है। रात के समय जंगली जीव दमकड़ीवासियों के लिए मौत की छाया बनते है। सरकारने उसकी सहायता के लिए कोई प्रबंध नहीं किया है। ऐसा यहाँ लगता है।

श्यामा, उनकी माँ, अध्यापक दिनेश प्रगतिवादी विचारों का प्रतिक है। चमार, हरिजन, आदिवासी का संगठन बनाकर अन्याय, अत्याचार का विरोध करते है। चमारों के लिए पीने के पानी की सुविधा मुहय्या करा देते है। दिनेश शिक्षा प्रसार करता है। नथुराम विजातीय विवाह करता है। रावसाहब फतेसिंह के आतंक का नारीसंगठन करके श्यामा मुकाबला करती है। अंत में सरपंच रामदास अपनी पराजय स्वीकारता हुआ अपनी पगडी श्यामा के चरणोंपर रखता है। यहाँ स्पष्ट है नारी संगठीत बनकर अपने अधिकार के लिए लड सकती है। उसमें सफलता प्राप्त कर सकती है। इसपर भी यहाँ सोचा है।

यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासों में उपन्यासकारने विभिन्न अंचलों में दलित जनजीवन में उत्पन्न चेतना को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। दलितों में अब धीरे-धीरे चेतना उत्पन्न हो रही है। दलितों में संगठन की भावना बढ़ रही है। शिक्षा की व्यवस्था, ऋण की सुविधा, पीने के पानी की व्यवस्था उपलब्ध कराकर दलितों का जीवन भौतिक सुविधा से संपन्न करने का कार्य चल रहा है। राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक स्तरपर चेतना का निर्माण हो रहा है। मंदिर को सबके लिए खुला करवाना, पीने के पानी के लिए पनघट खुला करवाना, नारी का संगठन बनाना, नौकरी में आरक्षण रखना आदि घटनाएँ दलित जनजागृति का प्रमाण लगती है। आलोच्य उपन्यासकारों ने अपनी कलम से इन्हें व्यक्त कराकर सामाजिक प्रतिबध्दता निभाई है ऐसा लगता है। सामाजिक क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में उन्होंने अपना योगदान दिया है ऐसा लगता है।

राजनीतिक नेताओं ने राजनीतिक स्तरपर क्रांति की, समाजसुधारकों ने सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने की चेष्टा की तो साहित्यिकारों ने साहित्य के माध्यम से सामाजिक, क्रांति

का नारा बुलंद किया ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। मार्क्सवाद एवं प्रगतिवाद से प्रभावित साहित्यिकार वर्गसंघर्ष एवं जातीय विवाद को मिटाकर समानाधिकार, समानसमाज व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं। साहित्य में सिर्फ शुष्क दार्शनिकता नहीं बल्कि वास्तविकता भी रही है, ऐसा लगता है।

5) आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी पात्र :-

उपन्यास के तत्व में पात्र और चरित्रचित्रण एक महत्वपूर्ण तत्व है। कथावस्तु का विकास करना, साहित्यिकार के विचारों का प्रतिपादन करना, घटनाओं का यथार्थचित्रण करना आदि कई प्रकार का कार्य यह तत्व करता है। पात्र और चरित्र चित्रण में नायक, नायिका प्रधान पात्र होते है। नायक पुरूष प्रधान पात्र तो नायिका स्त्री प्रधान पात्र होते है। नायक नायिका, साहित्यिकार के विचारों का प्रतिनिधित्व करते है। आलोच्य उपन्यासों में भी कई ऐसे पात्र है जो सामाजिक क्रांति को बल देते है ऐसा लगता है। नायक नायिका के गुण उनमें दिखाई देते है। अन्याय का विरोध, समाज जागृति, संगठन, शिक्षा प्रसार, कार्य करने की प्रबल आत्मशक्ति आदि कई विशेषताएँ यहाँ दिखाई देती है।

शिवशंकर शुक्ल लिखित 'मोंगरा' 1970 में छत्तीसगढ़ के लोकजीवनपर लिखा एक मार्मिक उपन्यास है। गांव में रहनेवाले किसानों, दलितों के सुख-दुख और उनके जीवन-संघर्ष का यहाँ आत्मीयता पूर्ण चित्रण हुआ हैं। जो कई अर्थों में पूरे भारत के गाँवों का चित्रण कहा जा सकता हैं। स्वतंत्र भारत की जनता की आशा-आकांक्षा, उत्साह और खुशी को यहाँ निराशा और आशा के सूत्रों में पिरोकर बहुत सशक्त रूप में दिखाया गया हैं।

इस उपन्यास का नायक मंगलू अपने धर्म और ईमानपर अमल करता था फिर भी गाँववाले उसे गाली देते थे। मंगलू ब्राह्मण होकर भी खेती करता है तो गाँववाले उसे अपना नहीं समझते। वह अपने घर में चमार चरणदास को रख लेता हैं। तो लोग उसे बिरादरी से निकालते हैं। उसने ब्राह्मण होकर भी खेती में हल चलाया, इससे उत्तेजित होकर गाँववालें ने जाति

पंचायत ने पापी कहकर बहिष्कृत किया। फिर भी मंगलू पंचायत को ठुकराकर अपना कार्य करता हैं। इतना ही नहीं चमार चरणदास को अपने घर में रखना एक प्रगतिवादी विचारों की दर्शक घटना हैं।

मोंगरा का पति फिरन्ता को अवैध धंधे करने के जुर्म में पुलिस पकड़कर ले जाती हैं। किंतु मोंगरा अपने भइया के पास जमानत के लिए पैसे नहीं देती। दूसरे दिन जब फिरन्ता घर आता हैं, तो वह मोंगरा पर गुस्सा करता हैं। तब मोंगरा कहती हैं - "मैं धरम के रास्ते से बेलीक नहीं हुई हूँ। इसलिए मैंने अपने भइया को तुम्हें छुड़ाने के लिए रूपया भी नहीं दिया था। मैं नहीं चाहती कि, पाप की डाल फूलें और फलें। वह जितनी जल्दी मुरझाए उतनाही अच्छा है।"[10] फिरन्ता यह बात सुनकर चूप तो हो जाता हैं। वह समझाती हैं कि, तुमने अपना कुकर्म नहीं छोड़ा तो मेरी मिट्टी ही तुम्हारे हाथ आएगी। दूसरा रास्ता बताती है - "ईमानदारी और मिहनत का तुम पसींना बहाकर चार पैसे कमओ। इससे अगर हमें नूनभात भी मिला तो उसे हम बड़े प्रेम से खाऐंगे।"[11]

यहाँ पर मोंगरा चेतित, प्रेरित नारी हैं, जो अवैध धंधों एवं कुकर्मों के खिलाफ आवाज उठाती हैं। अपनी पति फिरन्ता को मेहनत और ईमानदारी का सही रास्ता दिखाती हैं। अवैध धंधा करने से उसे रोकती हैं। इस उपन्यास की नारीपात्र मोंगरा धर्म का रास्ता चुनती है। वह सफल भी हो जाती है, ऐसा प्रतीत होता हैं। प्रस्तुत उपन्यास का एक पात्र चमार चरणदास हैं, जो परंपरागत मोची का धंधा करता हैं। सरकार दलितों के विकासके लिए कम सूद पर कर्ज की व्यवस्था कर रही है। इसी योजना का लाभ उठाकर चरणदास ने सरकारी योजना से कर्ज लिया और परंपरागत धंधा छोड़कर मुर्गी पालने का नया धंधा शुरू किया। अत: स्पष्ट हैं, नये धंधों का स्वीकार करने की प्रगतिवादी विचारधारा यहाँ दिखाई देती हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल लिखित 'खारे जल का गाँव' (1972) में बेवहारी और देवगांव में दलितों और औरतों को मंदिर से पंडित महाराज निकाल देना चाहते है, तभी

क्रांतिकारी विचारों का प्रतिनिधी सुग्रीव कहता हैं, ''पंडित महाराज, क्या आप यह समझते है कि जो 'इहाँ' खड़ीं है, वे किसी की 'बहुरिया-बिटिया' नहीं है? ई बड़कवा - छोटकवाँ यहाँ नहीं चलेगा। ई भगवान का दरबार है।''[12] यहाँ पर सुग्रीव ऊँच्च-नीच का भेदभाव मिटाना चाहता है। वह पंडित महाराज को मुँह तोड़ जवाब दे देता हैं। यहाँ उच्च-नीचता जातीयता का विरोध करके मंदिर भगवान का दरबार मानकर सभी के लिए खुला होना चाहिए इसपर बल देता हैं।

जब अरविंद अस्पताल से मुक्त होकर बेवहारी आता है, तब बाजों-गाजों के साथ निकला जुलूस हनुमानजी के मंदिर के सामने सभा में परिवर्तित होता हैं। उस जुलूस में शामिल लोगों को अरविंद कहता है - ''मुझे प्रसन्नता है कि आप लोगों में अब राजनीतिक और सामाजिक चेतना आ गयी हैं, अपने अधिकार के लिए लड़ना आपने सीख लिया हैं।''[13] अरविंद लोगों में चेतना पैदा करके जातिवाद को मिटाना चाहता हैं। वह सुझाव देता है कि महाविद्यालय का नाम भी जाति के आधार पर न हो, स्थान के आधार पर हो।

अरविंद 'क्रांतिकारी मोर्चा' बनाकर चुनाव लड़ता है, मजदूरों का संगठन बनाकर उचित मजदूरी की मांग करता है, सहकारी उपभोक्ता भांडार खुलवाता है तथा चमरहाटी में प्रौढ शिक्षा केंद्र शुरू करवाता है आदि उनका कार्य प्रगतिवादी पात्र के रूप में दिखाई देता है। चनकी को किस्सूसिंह पकड़ लेता है, तब वह अनाज का टोकरा उसके ऊपर छोड़कर भाग जाती है। छिद्दन को बतानेपर वह चनकी को झापड लगा देता है, तब चनकी चिखती हुई कहती है - ''तू गुलामी कर, अपने मालिक केर, हम न करव। हम मइके जाय रहे इन।''[14] यहाँ चनकी एक संघर्षशील नारी है, वह अपनी इज्जत के लिए अपने पति को छोड़ने को तैयार होती है। इज्जत बचाने के लिए चनकी किस्सूसिंह का भी विरोध करती है।

केसरवानी महाविद्यालय के लिए आए हुए लोगों के सामने जमुना मास्टर बैठक का उद्देश स्पष्ट करते हुए कहते है - ''यदि हम लोग मिलजुलकर यहाँ पर एक 'केसरवानी

महाविद्यालय' की स्थापना कर देते है, तो उच्च शिक्षा की व्यवस्था हो सकेगी। समाज का उपकार होगा, गाँव का भला होगा और कई पढे लिखे युवकों की बेकारी समाप्त होगी।''[15] जमुना मास्टर लोगों की भलाई के लिए कार्य करते है। शुक्लजीने इन पात्रों के माध्यम से दलितों में निर्माण होनेवाली चेतना को उजागर किया है। चनकी जैसी नारी अपनी इज्जत के आगे किसी की भी परवाह नहीं करती। अरविंद, सुग्रीव , धार्मिक, राजनीतिक कट्टरता के खिलाफ कार्य करते हुए सामाजिक क्रांति में सहयोग देते है ऐसा लगता है।

नरेंद्रदेव वर्मा लिखित 'सुबह की तलाश' (1972) में फगुवा पंडित का चरित्र क्रांतिकारक का रहा है। वह स्वतंत्रता हेतु जगह-जगह जन-आंदोलन की भूमिका का निर्माण करता है। ग्राम्य जीवन में जाति-पाँति के कठोर बंधन फगुवा छिन्न-भिन्न करना चाहता है। वह अपने वंशाभिमान और कुलमर्यादा का उल्लंघन करता है। यह उनका क्रांतिकारी कदम था। वे गाँव में दलितों के बीच परम रक्षक बन जाते है।

सोमेश्वर नौकरी छोडकर पूरी तरह से देशसेवा में जुड़ जाना चाहता है, तब फगुवा पंडित कहते है - ''अभी तुम जो काम कर रहे हो, क्या वह देश-सेवा से कम है?''[16] सोमेश्वर और फगुवा पंडित दोनों देश-सेवा करते है किंतु सोमेश्वर तो अपने आप को उसमें झोंक देना चाहता है। सोमेश्वर चमरहाटी में शिक्षा केंद्र चलाता है तथा दलितों को कोडे से पीटने वाले ठाकुर को भी वह फटकारता है। यहाँ स्पष्ट है ठाकुरों की मनमानी, शोषण की नीति, अत्याचार की प्रवृत्ति का विरोध करनेवाला प्रगतिवादी पात्र है।

फगुवा महात्मा गांधीजी के विचारों से प्रभावित है। वह हरिजन उध्दार का कार्य करता है। फगुवा खुलकर काम करता है। मंदिर में हरिजनों को रोकने पर फगुवा कहता है, ''जो देवता हरिजनों के दर्शन से, स्पर्श से अपवित्र हो जाता है उसे मैं देवता नहीं, शैतान मानता हूँ। देवता तो सर्वजन - तारक, सर्वजन - सुखदायक होते हैं। जो लोग आदमी-आदमी में भेदभाव करते है, वे धर्म की खाल ओढ़े अधर्मी और बर्बर भेडिये है।''[17] यहाँ स्पष्ट है फगुवा

धर्म का सही अर्थ स्पष्ट करता है। देवता, भगवान, मंदिर धर्म का सही भाव स्पष्ट करता है। यह नये विचारों का प्रतिपादक पात्र रहा है।

पुरखिन अपने घर में सोमेश्वर को फगुवा के साथ खाना खिलाती है। पुरखिन ब्राह्मण है और सोमेश्वर मरार होने के कारण अपना थाल खुद ही उठाता है, तो पुरखिन कहती है - ''अरे नहीं बेटा, जैसा फगुवा वैसे ही तुम हो। तुम थाली में हाथ धो लो। मैं माँज दूँगी।''[18] यहाँ पुरखिन के जाँति-पाँति के भेदभाव को मिटाने वाले विचार है। वह एक प्रगतिशील नारी के रूप में चित्रित हुई है।

जब सुहागा और रणधीर की शादी की बात चलती है, तब सुहागा उसे फटकारती है और कहती है, ''कमीना, कुत्ता कही का'' यहाँ ठाकुर को फटक़ारनेवाली नारी दिखाई देती है। यहाँ स्पष्ट है जब नारी स्वयं सबल, प्रखर बनेगी तो वह खुद की रक्षा करने में सक्षम बनेगी। यह कार्य आज धीरे-धीरे हो रहा है ऐसा लगता है। इसके दर्शन सुहागा के माध्यम से होते है। रामअधार की बहन परागा की इज्जत ठाकुरद्वारा लूटने पर रामअधार प्रतिज्ञा करता है, ''मैं इस कमीने कुत्ते की हवेली की ईंट से ईट बजा दूँगा उसका समूल नाश करूँगा।''[19] रामअधार के माध्यम से लेखक ने उसके मन में उठा तूफान स्पष्ट किया है। यहाँ रामअधार ठाकुरों की मनमानी मिटाना चाहता है। परागा की इज्जत लूटनेवाले ठाकुर का नामोनिशान मिटाने की प्रतिज्ञा करता है।

यहाँ स्पष्ट अब ग्रामवासी ठाकुरों, जमींदारों की मनमानी नहीं स्विकारते, उसका वे डटकर विरोध करते है। सुहागा रामअधार इसी प्रवृत्ति के प्रतिक है। अपनी अस्मिता, इज्जत की रक्षा करने के लिए लोग आगे आ रहे है - ऐसा लगता है।

राकेश वत्स लिखित 'जंगल के आसपास' (1980) में श्यामा, चंदेरी बेटों को बहन की रक्षा न कर सकने के कारण बुलदिल कहकर डाँटती हैं। श्यामा से वह कहता है, ''हमको बुजदिल कहती है चुडैल, जीभ काट के फेंक दूँगा।'' उसपर श्यामा कहती हैं -

''अपनी बहन को तो बचा नहीं सका शियाल, मेरी जीभ काटेगा। श्यामा का मतलब नहीं जानता क्या ? काली होता है, महाकाली। आ, काट जीभ।''[20] यहाँ श्यामा संघर्षशील नारी का प्रतीक है।

दिनेश ने इंटर कास्ट मैरिज की बात छेडनेपर वह सुचित्रा के दिलपर मरहम लगाने की कोशिश करता है, तब सुचित्रा कहती है - ''नहीं, मेरे कहने का मतलब यह नहीं था कि मैं अपराध भावना महसूस कर रही हूँ, बल्कि मैं तो इसपर गर्व करती हूँ और चाहती हूँ कि बार-बार ऐसी घटनाएँ घटे जो इस पत्थर हो गए समाज की मानसिकता को चोटपर चोट करके पिघला दे।''[21]

सुचित्रा के विचार से वह खुद को अपराधी नहीं मानती क्योंकि वह खुदपर गर्व महसूस करती है और चाहती है कि ऐसी ही घटनाएँ घटे, जिससे यह समाज पिघल जाए। सुमित्रा पुरानपंथी विचारों की नहीं है, उसके विचार आज के जमाने के बदलते संदर्भों के साथ बदले हुए है ऐसा लगता है। विजातीय विवाह का समर्थन करनेवाली सुचित्रा और दिनेश लगते है। जातीयता, भेदाभेद को मिटाने का यह भी एक अच्छा तरीका लगता है, उसपर भी उपन्यासकारने प्रकाश डाला है। दिनेश छुआछूत को समाज की बिमारी मानता है।

दिनेश अध्यापक होने के नाते बच्चों को दधीची से लेकर सुकरात और जैन से लेकर भगतसिंह तक के बलिदान की कहानियाँ भी सुनाता है। सुचित्रा ने दिनेश को कहा था 'क्या सिखाते हो बच्चों को'? दिनेश कहता है - ''अपने अधिकारों के लिए लड़ने की ताकत, संगठन की ताकत और संगठन बनाकर काली ताकतों के खिलाफ आवाज उठाने की ताकत की शिक्षा देता हूँ।''[22]

यहाँ दिनेश संगठन शक्ति के बलपर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की शिक्षा देने का प्रयास करता है। वह आगे कहता है - ''हां, हम लोग संगठन की शक्ति से सिर्फ इन जानवरों से ही नहीं ,दूसरी किसम की खतरनाक आफतों से भी अपनी हिफाजत कर सकते

है।"[23] श्यामा भी संगठन शक्तिपर विश्वास रखती है, अन्याय, अत्याचार शोषण का विरोध करनेवाली श्यामा अंत में कहती है, "हम अन्यायी, अत्याचारीयों का नामोनिशान मिटा सकते है।" उनका यह कथन आत्मशक्ति का प्रतीक है। संगठन शक्ति के बलपर सरपंच रामदास को पराजित करके चमारों के लिए पानी की व्यवस्था उपलब्ध कराने में वह सफल रहती है। यहाँ स्पष्ट है सफलता एवं कामयाबी का एक सोपान संगठन है, इसलिए शोषित, पीड़ित, दलित जब संगठित बनेंगे तो उनका विकास होगा।

श्यामा, दिनेश, सुचित्रा जैसे अन्य क्रांतिकारी पात्र हैं, ज्यो अन्याय, शोषण, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाते है और उनका विकास करना चाहते है, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक क्रांति में योगदान देते है, ऐसा लगता है।

निष्कर्ष :- अत: स्पष्ट है, आलोच्य उपन्यासकारों ने आलोच्य उपन्यासों में दलित जीवन, उनकी चेतना का सही चित्रण किया है। अब दलितों में से ही नेतृत्व आगे बढ़ रहा है। उनमें नई चेतना पैदा करने का कार्य हो रहा है। 'मोंगरा' का चरणदास, 'खारे जल का गाँव' का अरविंद, 'सुबह की तलाश' का सोमेश्वर, 'जंगल के आसपास' की श्यामा, दिनेश आदि पात्र इस कोटी के है। आज सरकार भी दलित जीवन में सुधार चाहती है, प्रयास करती है। शिक्षाप्रसार, पीने के पानी की व्यवस्था, ऋणसुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास हो रहा है। आलोच्य उपन्यास में इसका चित्रण हुआ हैं। साहित्यिकारों ने अपनी रचना में प्रगतिवादी, आंबेडकरी विचारों के वाहक पात्र चित्रित करके सामाजिक क्रांति को दिशा देने का राष्ट्रीय कार्य किया है ऐसा लगता है।

निष्कर्ष :-

सामाजिक क्रांति के रूप में दलित पात्रों का योगदान इस अध्याय में सामाजिक क्रांति - कारण - स्वरूप, सामाजिक क्रांति के दूत डॉ. आंबेडकर, साहित्यिकारों का कार्य, उपन्यासकारों का कार्य, आलोच्य उपन्यासों के पात्रों को स्पष्ट किया है।

सामाजिक क्रांति से देश में आनेवाले बदलाव को स्पष्ट किया है। इस कार्य में दलित

पात्रों ने अपना योगदान किसतरह दिया है यह भी चित्रित किया है। सामाजिक क्रांति के कारण तथा स्वरूप स्पष्ट करते हुए सामाजिक क्रांति के दूत तथा दलितों के मसीहा डॉ.आंबेडकर के जीवन का चित्रण किया है। डॉ. आंबेडकर ने दलितों को अपना हक माँगना सिखाया और संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

साहित्यिकारों के कार्य में प्रेमचंद, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, निराला, राहुल सांकृत्यायन, शिवशंकर शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा, मदन दीक्षित, जगदीशचंद्र, यज्ञदत्त शर्मा, दया पवार, बेचन शर्मा, शिवप्रसादसिंह जैसे आदि साहित्यिकारों के साहित्य में दलित पात्रों की चेतना का चित्रण किया है। उसे स्पष्ट करते हुए उपन्यासकारों के कार्यपर प्रकाश डाला है। यह भी स्पष्ट किया है कि सामाजिक क्रांति के कार्य में उन्होंने अपना सहयोग दिया है।

शिवशंकर शुक्ला का 'मोंगरा', डॉ.भगवतीप्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गाँव', नरेंद्रदेव वर्मा का 'सुबह की तलाश' , राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास' आदि उपन्यासों में दलित पात्रों का कार्य स्पष्ट किया है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि अब दलितों में संगठन की प्रवृत्ति बढ रही है, वे शिक्षित बन रहे है, सामाजिक क्रांति के लिए सहयोग दे रहे है। उपन्यासकारों के कार्य के साथ-ही-साथ आलोच्य उपन्यासों के क्रांतिकारी पात्रों को स्पष्ट किया है। 'मोंगरा' उपन्यास के मंगलू, मोंगरा, 'खारे जल का गाँव' में सुग्रीव, अरविंद, चनकी, जमुना मास्टर, 'सुबह की तलाश' में फगुवा पंडित, सोमेश्वर, पुरखिन, सुहागा रामअधार, 'जंगल के आसपास' में श्यामा, दिनेश, सुचित्रा आदि पात्र क्रांतिकारी विचारो के वाहक पात्र है। इन्होंने अपने माध्यम से उपन्यास की कथा में जान डाली है। इसलिए यह किसी अंचल की कथा होने के बावजूद भी जिवंत रचना लगती है, इसके पात्र दलित चेतना के प्रतिक लगते है। सामाजिक परिवर्तन, संक्रमण और सामाजिक क्रांति के लिए साहित्यिकार और उनके पात्रों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है । इस दृष्टि से वे सफल रहे है ऐसा लगता है।

संदर्भ

1) हिंदी-अंग्रेजी कोश, डॉ. ब्रजमोहन, डॉ.बद्रिनाथ कपूर, प्र.सं.1980, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरट, पृ.162

2) डॉ. महेन्द्र भटनागर, 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद', प्र.सं.1982, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ.6

3) डॉ. सुरेन्द्र प्रताप यादव, 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना', प्र.सं.1992, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 30

4) वही, पृ. 33

5) जगजीवनराम, 'भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या', प्र.सं.1996, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.22

6) चेतन मेहता, 'युगदृष्टा : डॉ.भीमराव आंबेडकर', प्र.सं.1991, मालिक एण्ड कंपनी, जयपुर, पृ.10

7) यशवंतराव चव्हाण, 'दलित साहित्य : वाङ्मय प्रवाह', प्र.सं.1992, मुक्त विद्यापीठ, पृ. 11

8) डॉ. लिलावती देवी गुप्ता, 'प्रसाद साहित्य में युग चेतना', प्र.सं.1996, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, पृ.39

9) डॉ. महेन्द्र भटनागर, 'समस्यामूलक उपन्यासकार : प्रेमचंद', प्र.सं.1982, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ.27

10) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र.सं.1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.58,59

11) वही, पृ.70

12) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र.सं.1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.12

13) वही, पृ.103

14) वही, पृ.76

15) वही, पृ.101

16) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र.सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.88

17) वही, पृ.44

18) वही, पृ.51

19) वही, पृ.110

20) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र.सं.1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.17

21) वही, पृ.59

22) वही, पृ.61

23) वही, पृ.116